(1807)

सविस्तार वर्णन करता है - विप्रों ने कहा हमारा शाप मिथ्या नहीं हो सकता और बदला भी नहीं जा सकता। "भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर। किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर॥"

इधर आकर कपटी मुनि सब सुनाता है, मुनि दुश्मन पराजित राजाओं को इकट्ठा कर प्रतापभानु पर चढ़ आता है एवं युद्ध में प्रतापभानु सहित समाज मारा जाता है। यह है भवितव्यता का विचित्र खेल और प्रभाव। "भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम। धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम॥"

पुनर्जन्म में प्रतापभानु एवं उसका साथ परिवार रावण, आदि अपना परिवार होकर पैदा होते हैं।

प्रतापभानु अति धर्मनिष्ठ एवं ज्ञानी था - भूपति विविध भाँति दान देता, वेदपुराणादि धर्मशास्त्रों को सुनता. तीर्थों में मन्दिर

1808

सब प्रकार के
बतलाये, हमारे धर्म में किये भाँति वेदविहित
सारे सत्कर्म किए - और स्वयं भी इतना कि
निष्काम होकर करता और उनका फल श्री हरि
को समर्पित करता जाता और प्रजा के आचरण
करता, प्रजा को सुख सुविधा के सारे कार्य करता।

भूप प्रताप भानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सबकै सेवा॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥
नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा॥
बिप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥
जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥ (१-१५५)
हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥ (१-१५६)

उपर्युक्त सारे सुकृत जब उसके आड़े नहीं
आते हैं, और जिस विप्रवंश की सदा सेवा
करता रहा है वही विप्रगण सच्ची [illegible] उसने

और मानने के बाद भी जब निर्दोष राजा
कोई दिये राज्य को अनुग्रह में परिणत
नहीं करते हैं - उस निर्दोषी को सपरिवार
नाश होकर सपरिवार ध्वस्त हो जाना पड़ता है
तब स्वाभाविक राजा के हृदय में सत्कर्मों
धर्मों देवताओं और ब्राह्मणों के प्रति घोर
~~इसके प्रति~~ घृणा अपना घर कर लेती है
परिवार के ~~नि~~ दोषी अन्य सदस्यों को भी
बिना कारण ध्वस्त बनकर पुनर्जन्म
लेना पड़ता है तब आगले जन्म में ब्राह्मण
कुल के जानी दुश्मन बन जाना स्वाभाविक
ही है अतः रावण ~~अपने~~ इन सबों का नाश
करने का आदेश देता है एवं राक्षसगन इनमें
लगे रहकर सारे कुकर्म आदि करते रहते हैं

द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम बाधा।
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहु सुनिअ न बेद पुराना
जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥
(1-183)

(1810)

सती पार्वती का एक पात्र रूप होने पर भी उसकी लिप्सा का अन्त नहीं होता है। और वह जहाँ कहीं से दुर्बल हो तनु समय जिते जाति करउ, सत कल्प तक पहुँचने से इन्द्रियों की इच्छाएँ अपूर्ण ही रह जाती हैं जिसके कारण जैसा भी दुर्घटना में घटित हुई। अपूर्ण पूर्वजन्म में रावण होकर तप करके वर माँगता है हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें (१-१७७) और वर प्रताप से भुजबल विश्व वश्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र। मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र (१-१८२)* यह है पूर्वजन्म की प्रचण्ड अपूरित इच्छा पूर्ति पुनर्जन्म में। उपर्युक्त कितने ही अमूल्य सिद्धांतों को समझाने के उद्देश्य से तुलसीदासजी ने यह दृष्टान्त प्रतापभानु की कथा को श्री रामचरित मानस में रखा है।

*यह है असंचित क्रोध का प्रतिफल – यदि विप्रगण को देखकर घोर शाप नहीं देते तो प्रतिशोध रूप पुनर्जन्म में प्रतापभानु आदि रावण द्वारा धर्म, विप्रवंश, ऋषि मुनियों के घोर नाश एवं दैव निरोधी कार्यों का अवतरण ही नहीं होता – ऐसी लगती है।

स्वाभाविक ही आज के तर्क प्रधान युग में यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि राजा के इतने धार्मिक कर्म भी हरि को अर्पण किये हुए सुकृत फल भी प्रजा के आड़े नहीं आये और उसका इतना दुखद अन्त होता है तो फिर सुकृतों के चक्कर में पड़ कर समय, धन और शक्ति का अपव्यय क्यों किया जाय और कर्म फल का सिद्धान्त ही धोखा है। किंतु इस विषय पर गूढ़ विचार करना आवश्यक है। गूढ़ विचार करने पर यह तर्क नहीं ठहरता। प्रभु मंगल भवन अमंगलहारी कहे जाते हैं। प्रभु-अर्पित सुकृतों का फल तो जीव का परम हित होना ही तो है। सांसारिक दृष्टि से भौतिक हितों से इसको नहीं मापा जा सकता क्योंकि यह तो शाश्वत हित है। इन सुकृतों निष्काम सुकृतों का सुफल तो पारमार्थिक ही होता है - सकाम सुकृतों का फल काम्य वस्तु की प्राप्ति होती

1812

है। मनुष्य का परम मांगलिक परम हित तो प्रभु-प्राप्ति ही है जहाँ मनुष्य परम शान्ति और सुख प्राप्त करता है। ~~[illegible]~~ कागभुसुण्डि जी हरि-वाहन गरुड़ से अपना अनुभव वर्णन करते हुए कहते हैं —

"नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना॥
देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं॥

भुसुंडी जी के पूर्व कर्मों का ही सुफल है जो आज उनको भजनानंद का चिरसुख और शान्ति दे रहा है। प्रतापभानु के प्रभु-अर्पित सुकृतों का सुफल ही तो है जो उसके फलस्वरूप अगले जन्म रावन की ज्योति प्रभु के श्री मुख में समाती है — ~~[illegible]~~ सदा के लिये संसार में आवागमन से छुटकारा मिल जाता है। इससे अधिक और क्या जीव को प्राप्त होगा।

(1813)

ऋं.ऌ: सं.69

5/9/83 — अनेक ब्रह्मा —

सृष्टि कर्ता ब्रह्मा एक चतुरानन ही नहीं हैं – इनके सिवाय अनेक ब्रह्मा और भी हैं – सबकी आकृतियां भिन्न भिन्न हैं – यह बात विश्वास योग्य नहीं लगती पर है अक्षरशः सत्य ॥

ब्रह्मांड अनेक हैं इसका उल्लेख मानस में कई स्थलों पर है। श्री राम चरित मानस के प्रत्येक शब्द अकाट्य सत्य हैं – उठने वाली शंकाओं का समाधान भी अध्ययन करने पर मानस में ही अन्यत्र मिल जाता है। श्री मद्भागवत आदि अन्यान्य शास्त्रों में भी इस तत्व तथ्य की पुष्टि पाई जाती है

हमारे शास्त्रकारों की यह कोरी कल्पना मात्र नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी हमारे ब्रह्मांड के सूर्य मंडल व भूमि से बहुत दूरी पर अंतरिक्ष

1814

में हमारे सूर्य से भी कई गुने प्रचंड
प्रकाश वाले और बड़े अन्य सूर्यों
को अस्तित्व पाया है - यही
नहीं अमेरिका का एक अंतरिक्ष-
यान (Spacecraft) जो हमारे सूर्य की
सीमा को लाँघकर अंतरिक्ष में चलता
चला जा रहा है एवं जानकारी फोटो एवं
सिगनल पृथ्वी पर भेजता जा रहा है

यह तो तर्क सिद्ध है कि इन सारे
ब्रह्मांडों के समूहों एक सूत्र में
शृंखलाबद्ध बाँधे रखने हेतु नियन्त्रित
एक परम शक्ति अवश्य है जिसके
नियंत्रण में प्रत्येक ब्रह्मांड अपने
अपने स्थान पर मर्यादित रूप से
सहज स्वाभाविक तौर पर आचरण
करते रहे। वह शक्ति है परब्रह्म परमेश्वर
यह नाम ही बताता है कि वह सर्वोपरि
सत्तावान, सबों का नियंत्रक, स्वामी
एवं पालक है यानि उसी की आज्ञा

अनुशासन से सब संचालित हैं क्योंकि उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने की क्षमता नहीं ~~कर सकता~~। सर्वथा आर्य शास्त्रों के अनुसार नहीं वरन् कुछ पुरमें इन त्रेता युग में श्रीराम होकर एवं द्वापर युग में श्री कृष्ण होकर नर रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं।

यह भी तर्क ~~सिद्ध~~ संगत है कि प्रत्येक ब्रह्मांडों के सृष्टि कर्ता ब्रह्मा एवं प्रलय कर्ता रुद्र अपने अपने अलग अलग होने ही चाहिये - अर्थात् जितने ब्रह्मांड उतने ही ब्रह्मा।

द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अपने इस विराट रूप के दर्शन अपने कई भक्तों को देने का उल्लेख श्रीमद् भागवत में आया है किंतु विस्तार भय से भगवान के अनंत प्रसंगों को छोड़ दिया जा रहा है।

1818

सती विमोह प्रसंग में सती को समझाते हुए भगवान शंकर के वचन प्रमाण करते हैं कि श्री राम समस्त ब्रह्मांडों के एवं समस्त ब्रह्मांडों की रचयिता माया के स्वामी हैं निजतंत्र यानि स्वतंत्र हैं।

सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥ (१-५१)

परब्रह्म परमेश्वर का मनु (दशरथ) सतरूपा (कौशल्या) को वरदान कि मैं तुम्हारे पुत्र स्वरूप में अवतार लूँगा (१-१५२) पृथ्वी, [illegible] ब्रह्मा, शिव एवं अन्य देव समूह को आकाशवाणी द्वारा आश्वासन कि दशरथ-कौशल्या का पुत्र होकर मनुज अवतार लूँगा (१-१८७) श्री राम के परब्रह्म होने के सम्बन्ध में उल्लेख मिलते हैं।

श्री राम के जन्म के समय कौशल्या द्वारा स्तुति ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै। (१-१९२) अर्थात् प्रत्येक वेद कहते हैं कि माया द्वारा रचे हुए

समस्त ब्रह्मांड आपके रोम रोम में बसे
हैं। आपका अतुली रूप इतना बड़ा है।
यही नहीं कौशल्या को अपना विराट
दर्शाने की जब प्रभु कृपा करते हैं तब वह
उनके रोम रोम में कोटि कोटि ब्रह्मांड
देखती है (१-२०१)। एवं काकभुशुंडी
भी प्रभु के पेट में पहुंचने पर प्रभु के पेट में भी
कोटि कोटि ब्रह्मांड देखते हैं और एक
ब्रह्मांड में एक सौ वर्ष घूमते रहे (७-८०)।
कोटि कोटि ब्रह्मांड होते एवं परब्रह्म
परमेश्वर को इन समस्त ब्रह्मांडों के स्वामी
होने के सम्बन्ध अपरोक्ष प्रमाण मानस में मिलते हैं।

भुशुंडी जी प्रभु के उदर में कोटि ब्रह्मा
एवं शिव देखते हैं (७-८०)। विराट रूप
दर्शन के समय जब जीवों ब्रह्माजी भी उनमें
"अगणित रवि ससि सिव चतुरानन" (१-२०२)
देखती हैं। यही नहीं सती-विमोह प्रसंग
में सती जी भी प्रभु की सेवा करते हुए, वंदन
करते हुए देखती हैं "देखे सिव बिधि बिष्नु

1818

"मम रूप दूसर नहिं देखा (१-५५)

अनेका (१-५४)" इत्यादि मानस के वर्णनों में भी अनेकानेक ब्रह्मा होने के उल्लेख स्पष्ट पाये जाते हैं ॥

"संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना (१-१४४)

पृथ्वी एवं सारे देवताओं को कष्ट निवारण हेतु अपनी असमर्थता प्रकट करके उन्हें साथ ले कर क्षीरसागर चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा पर ब्रह्म की स्तुति करना (१-१८६) एवं जब गरुड़ विरंचि के पास जाते हैं तब ब्रह्मा का विचार करना कि हरि माया ने मुझे बहुत बार नचाया है अतः गरुड़ के प्रति अपनी असमर्थता प्रकट करना (७-६०) आदि प्रसंग बतलाते हैं कि चतुर्मुख ब्रह्मा स्वयं को पर-ब्रह्म के अधीनस्थ मानते हैं क्योंकि पर ब्रह्म ही सारे ब्रह्माण्डों के अधिपति हैं नियंत्रक हैं।

भगवान शंकर के भी वचन हैं

"राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई (१-१२८)" आदि

पर ब्रह्मा की इच्छा (आज्ञा) सर्वदा
अनुल्लंघनीय है इसके अतिक्रमण
की क्षमता किसी में भी नहीं है। ठीक भी
तो है यदि सारे ब्रह्माण्ड एक ही सत्ता से शासित
नहीं होते तो वर्तमान अन्तरिक्ष
स्थित ग्रहों उपग्रहों में सही स्थान पर
किस प्रकार पहुंच सकते।

आखिर वैज्ञानिक अन्तरिक्ष यान

अनेक शङ्काएं अनेक ब्रह्मा पर
ब्रह्म के अधीन हैं इस विषय में ~~कल्याण~~
"कल्याण" के वर्ष ५० के पृष्ठ संख्या
५८४ में प्रकाशित एक कथा को
उद्धृत किया जा रहा है। इस कथा से
प्रेरित होकर यह लेख लिखा गया है—

"एक समय ब्रह्माजी भगवान के द्वार
पर पहुंचे। भगवान ने द्वारपाल के द्वारा
पुछवाया कि आप कौन से ब्रह्मा हैं।
ब्रह्मा को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ।
वे सोचने लगे कि 'कहीं ब्रह्मा भी [illegible]
[illegible] ही हैं।' उन्होंने कहा 'जाओ

(1820)

कहीं चतुर्मुख ब्रह्मा आये हैं। भगवान ने उनको अंदर बुलवाया। ब्रह्माजी का कौतूहल शान्त नहीं हुआ, उन्होंने पूछा, भगवन आपने यह कैसे पूछा कि कौन से ब्रह्मा हैं। क्या मेरे अतिरिक्त और भी कोई ब्रह्मा हैं? भगवान हँसे, उन्होंने विभिन्न ब्रह्मांडों के ब्रह्माओं का आवाहन किया। तत्काल वहां पर चार से लेकर हजार मुख तक के अनेकों ब्रह्मा आ पहुँचे। भगवान ने कहा देखो, ये सभी ब्रह्मा हैं। अपने अपने ब्रह्मांड के ब्रह्मा हैं। तब जाकर ब्रह्माजी का संदेह दूर हुआ॥"

उपर्युक्त कथा यह भी बताती है कि सारे ब्रह्मांडों के ब्रह्मा भगवान के ही अधीनस्थ हैं॥

संदेश 70

12/9/63

भगवान शंकर का स्वरूप

शिवजी का साकार स्वरूप आध्यात्मिक भावों का द्योतक है—

मूर्धा जटा में गंगा, बाघम्बर व शुभ्र श्वेत वस्त्र शुद्ध ज्ञान का; तीन नेत्र भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान होना बताते हैं। त्रिशूल तीनों प्रकार के शूलों का नाशक है। मुण्ड-माला धारण करना मृत्यु का स्मरण कराने वाला है। विषपान विषय भोगों को पचाने वाला है। गंगाजी का सिर से निकलना बताता है पाँच महाभूतों में से एक मुख्य तत्त्व जिसके बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकता उन्हीं पर निर्भर है। भूत पिशाचों की सेना बताती है कि शिव सब भूतों में व्याप्त हैं। शिवजी गरीबों के देवता हैं। बिल्वपत्र, धतूरे के फूल से प्रसन्न होता है इसीलिए उनका आशुतोष नाम है।

(1823)

[illegible]

14/9/83

— ज्योतिर्लिङ्ग —

धर्म और अध्यात्म क्षेत्र में शिव का स्थान बहुत ही ऊंचा है। शिव का पूर्ण रूप ब्रह्म का ही बोधक है। कल्याणकारी परमतत्व ही शिव कहलाता है। शैव मत में ज्योतिर्लिङ्ग का विशेष महत्व है। विश्व में शिव की पूजा लिंगाकार ही होती है। परमात्मा निर्विकल्प निराकार होते हुए भी ज्योतिर्मय पुंज है अतः उन्हें अण्डाकार प्रस्तर-खण्ड के रूप में कल्पित कर लिया गया है। ये सब अण्डाकार प्रस्तर-खण्ड वास्तव में होते हुए भी लिंगाकार ही प्रतीत होता है। यों तो उपज्योतिर्लिंग अनेक हैं एवं स्थान स्थान पर विविध नामों से पूजित होते हैं।

(1825)

किन्तु ज्योतिर्लिंग बारह ही हैं जिनके समूह को द्वादश-ज्योतिर्लिंग कहा गया है। निम्न स्थानों के निम्नलिखित नाम हैं

(१) काठियावाड़ — श्री सोमनाथ।
(२) श्री शैलपर — श्री मल्लिकार्जुन।
(३) उज्जैन — श्री महाकाल।
(४) ओंकारेश्वर — परमेश्वर [illegible]।
(५) बैद्यनाथ धाम में — श्री बैद्यनाथ।
(६) डाकिनी में — श्री भीमशंकर।
(७) सेतुबन्ध में — श्री रामेश्वर।
(८) दारुकावन में — श्री नागेश्वर।
(९) वाराणसी में — श्री विश्वनाथ।
(१०) गोदावरी तट पर — श्री त्र्यम्बकेश्वर।
(११) केदार खंड (हिमालय) श्री केदारनाथ।
(१२) शिवालय में — श्री घुश्मेश्वर।

(1825)

[illegible]

२४/१/०३ क्या भगवान शंकर तामसी हैं ?

बहुधा ऐसी मिथ्या भावना लोगों में पायी जाती है कि भगवान शंकर तामसी ही हैं, जितने ~~शैव भक्त हुए हैं~~ बड़े बड़े राक्षस हुए हैं सभी शैव ही हुए हैं एवं शिव जी के वरदान की शक्ति पर ही विश्व में इतने रोमांचकारी अत्याचार करते रहते हैं।

तुलसी दास जी ने लंकाकाण्ड के मंगलाचरण के तीसरे श्लोक में इस भावना का खुलकर खण्डन किया है

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे॥(३)

अर्थात भगवान शंकर सज्जनों को कैवल्य यानि ऐसी मुक्ति देते हैं जिसमें जीव प्रभु में मिल जाता है। साथ ही साथ खलों को दंड देने में भी पीछे नहीं रहते इनका स्वभाव ... भी

[illegible] (१-२५)

1826

यदि गुरु भी मंगलकारी होवें तुरंत प्रसन्न होने वाले यदि आशुतोष हैं एवं भक्त की प्रसन्नता के लिये सब कुछ दे डालते हैं। और (गुरु) सर्वात्म हैं भक्त को परम कल्याण की अवस्था करते हैं। अतः इसके पहले के श्लोक में कल्याण कल्पद्रुम कहकर स्तुति की गयी है।

इसकी भक्ति तीनों प्रकार की यानि वैदिक, तांत्रिक (तमोगुणी) पौराणिक (रजोगुणी) होती है। जैसा मातु वैसी ही उपासना करता है। इस विषय पर 'शिवोपासना' शीर्षक लेख इस कापी के पृष्ठ 1555 में विवेचन किया जा चुका है।

यहां 'गुरु' का एक पर्याय शब्द यानि कल्याण है (आ. भी. पृ. 210)

दसरथ परिवार के पुन्य राम भक्तों की तरह तुलसीदासजी भी ईश्वर कोटि के शिवभक्त हैं। मानस के वंदना प्रकरण में कहते हैं

"सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥
सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ॥(१-१५)

भगवान शंकर काशी में मरनेवालों के कान में राम नाम कह कर मुक्त करते हैं
काशीं मुकुति हेतु उपदेसू (१-१९)
तामसी शिव मुक्ति किस पर कर सकते हैं कारण मुक्ति जो सतोगुणी ही है परन्तु भगवान शंकर तामसी नहीं बल्कि परम कल्याणकारी है॥
काशी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी
(१-११९)

1828

सं. लं. सं. 73

27/9/83 क्या भगवान शंकर नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं?

इसी संदर्भ में बहुधा यह दलील भी पेश की जाती है कि तान्त्रिक ही नहीं हैं नशा भी किया करते हैं यहां तक कि शैव भक्त (लौकिक) भांग वगैरह नशीले पदार्थ चढ़ाया करते हैं अपने इस विचार की पुष्टि में कहा करते हैं कि ईश्वर उनकी आंखें नशे में चढ़ी रहती हैं एवं इसी आदत के कारण इत्यादि विष भी पी गये।

इन सब का समुचित समाधान तुलसीदास जी ने श्री रामचरित मानस में विशेषकर सती विमोह एवं शिव ~~विवाह~~-पार्वती विवाह प्रकरणों में किया है।

(1829)

भगवान् शंकर के लिये अनेक स्थलों पर ईश, प्रभु, भगवान् आदि ईश्वर वाचक शब्दों का प्रयोग हुआ है। जो भगवान् हैं उन्हें सांसारिक मादक नशीले पदार्थ का क्या सेवन कर सकते हैं। इन पदार्थों की क्या तो हस्ती है और क्या ही आवश्यकता पड़ सकती है भगवान को। परब्रह्म में सृष्टि कर्ता, पालक और संहर्ता तीनों ही समाहित हैं - भगवान शंकर त्रिदेवों में संहर्ता [struck through] हैं बाकी के दोनों त्रिदेव

एक

विष्णु (पालक) एवं कर्ता (ब्रह्मा) पार्वती जी से विवाह करलेने की प्रार्थना करने के लिये इनके पास आते हैं -

"सब सुर विष्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता।।"
(1-88)

यहाँ तक कि परब्रह्म श्री रामजी प्रकट होकर पार्वती जी से विवाह करने के लिये भगवान शंकर से विनती करते हैं

"अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु।।(1-76)

(1830)

ऐसे ही सब जिनसे प्रभु श्री रामजी अपने प्रति प्रेम की दुहाई देकर उन्हीं को विवाह के लिये अति विनीत विनति करें ऐसे शिव नशीली वस्तुओं का सेवन करें यह कल्पना ही कुउपयोग एवं दुराग्रह मात्र ही है।

~~"प्रभु विनती सुनि सिव ... मौ धारि जिन है ... आइ विवाह हेतु ... ॥~~ (...)

अब रह गयी नशे के कारण उनकी चढ़ी रहने वाली आँखों की बात। सो उनकी आँखें नशे से चढ़ी रहती हैं यहीं तक तो ठीक है पर देखना होगा यह नाशानशील वस्तु का है अथवा श्री राम के उच्चारण कीर्ति के प्रेम का। मानस से इस पहलू पर विशेष प्रकाश डालती है। प्रथम तो उनका राम में अटूट विश्वास देखा जाय जिसके कारण निरन्तर राम राम रटते ही रहते हैं कि

(1831)

राम नाम को भगवान् के सहस्र नाम के समान मानते है

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥ (१-१०८)
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। (१-१९)

(१-५८)
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा।
बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी
राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥ (१-६०)

* यही नहीं राम नाम जपते हैं कथा कहते हैं

अपना सहज स्वरूप याद आते ही अखण्ड समाधि लग जाती है जो सतासी हजार वर्ष तक लगी रहती है। यही नहीं ऋषियों के आज्ञा कर राम-कथा सुना करते एवं हरि भगति उनको बताते हैं उपदेश करते हैं-

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥ (१-४८)

यह इनकी राम भक्ति का ही प्रभाव है कि इन्होंने साबर मन्त्रों की रचना की जिनके शब्दों का न कोई मेल ही है और न कोई अर्थ ही है किंतु है बड़े ही प्रभाव शाली एवं स्वयं श्री राम इनकी भक्ति की बड़ाई करते हैं

"साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा।

(१८३२)

"अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥ (१-१५)
"कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥ (१-१३८)
"सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥ (१-१०४)

अब रही हलाहल विष पी जाने की बात - यह तो श्री राम नाम के प्रभाव पर उनका अटल विश्वास ही था जिसकी शक्ति पर इन्हें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं। ऊपर ब्रह्म द्वारा दिया गया प्रसाद था जो यह। यही नहीं कलियुग में भी अटूट विश्वास पर विष का प्याला पी जाने को मीरा बाई का उदाहरण सर्वविदित ही है।

"नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥"

श्रीराम-जन्म-महोत्सव का आनंद लूटने के लोभ में भगवान शंकर भुसुंडी जी के साथ कपट नर वेष में आनन्द विभोर हो अपनी सुध बुध खोये अयोध्या की सड़कों पर फिरते रहे।

काक भुसुँडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ॥
परमानँद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥
(द-२४५)

ऐसे उच्चकोटि के परब्रह्म श्रीराम प्रेम दिखाने एवं निर्गुण गुणातीत शम्भु के लिये नरलीला पद्धतियों के सेवन की कल्पना कितनी दुर्लभ वस्तु है इस के स्थान पर अहि भगवत्प्रेम के नशे में मस्त रहने की भावना समाज के लिये कहीं अधिक शिक्षाप्रद और कल्याणमयी होगी।

(1834)

सं० ले० से 74

3/10/83 सर्वेश्वर श्री राम

अखिल ब्रह्माण्डों के नियन्त्रक, पालक, संचालक एक बेजोड़ हस्ती है जो कि पर-ब्रह्म कहलाते हैं। यही पर-ब्रह्म परमेश्वर तो श्री राम रूप से अवतरित हुए हैं यह वर्णन रामचरित मानस में अनेक स्थलों में आया है - मनु शतरूपा को वरदान, ब्रह्मादि सभी देवों को नभ-वाणी द्वारा आश्वासन इत्यादि। इन्हीं की आह्लादिनी शक्ति सीता जी भी ~~मनुष्य~~ मनुष्य देह में ~~[illegible]~~ अवतरित होती हैं। श्री राम और सीता एक ही परब्रह्म नर और नारि रूप में अवतरे हैं।

श्री राम सारे ब्रह्माण्डों के कर्ता, पालक एवं संहर्ता हैं

"जो कर्ता पालक संहर्ता।। सोई रघुवीर पुनीत अनुरागी"

उसी प्रकार उनकी आह्लादिनी शक्ति सीता जी भी हैं यानि दोनों एक ही ~~[illegible]~~

"उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्। सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।"

है एक पुरुष रूप में दूसरी प्रकृति रूप में।

त्रिदेव आदि कर्त्ता (ब्रह्मा) पालक (विष्णु) संहर्ता (रुद्र, शंकर) प्रत्येक ब्रह्माण्डों के अलग-अलग हैं और सारे ही ब्रह्मा विष्णु महेश इनके अंश मात्र हैं इनके अधिपति श्री राम-सीता हैं। त्रिदेव अपने-अपने ब्रह्माण्डों के अधिपति हैं और इन सबके नाथ सीता और राम हैं। अतः श्री राम सर्वेश हुए।

जिस प्रकार किसी देश का राजा यदि अपने वेश बदलकर किसी भी वेश में आ जाय तो राजा ही ~~[illegible]~~ रहेगा। उसी प्रकार परब्रह्म वेश धारण कर यानि निर्गुण सगुण अवतार लेकर भी परब्रह्म ही रहेगा सर्वेश ही रहेगा।

(1836)

त्रिवेणीजी सिवाय

श्रीराम के दरबार कृतात्मक प्रधान
त्रेतायुगीय कुछेकों के हैरत कारनामे मानस
में स्थल स्थल पर गाया है। महाराज
दशरथ (१-१९३), महारानी कौसल्याजी
(१-२०१, २०२) महाराज जनक (१-२१६,
२१७) महर्षि वशिष्ठ (१-१९७) (५-४८), महर्षि
विश्वामित्र (१-२०६, २०७, ३५६) और कुराज
(२-१०८) आदिकवि वाल्मिकजी (२-
१२६) महारानी सुनयनाजी (२-२८५)
महर्षि याज्ञवल्क्य (२-२८५), केवट (२-१००)
अत्रि मुनि (३-५) शरभंग (३-८) सुतीक्ष्ण
(३-१०, ११) अगस्त्यजी (३-१३) चन्द्रमा
मुनि (४-२८) जटायु (३-३०, ३१) ऋक्षराज
जामवंत (४-२६) बाली (४-५, ६) पवनपुत्र
श्री हनुमंतलाल (४-२, ३) राक्षसराज
रावण (३-२३), विभीषण (५-४२)
कुंभकर्ण (६-६३) मन्दोदरी (६-७)
(६-१०४) (६-१४, १५) देवर्षि नारद (१-१३४)
अहिल्या (१-५५), लंकिनी (५-४) त्रिजटा (६-९९)
मारीच (३-२६) भुसुंडी (७-८०)

1838

"मुद समद सुर नर सब काहू। संग बंधु लै हिंद भुआला।" (१-२४५)
सब मंचन्ह ते मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥ (१-२४४)

जब यज्ञ स्थल में प्रभु पहुंचते हैं तब सारे उपस्थित सज्जन उन्हें अपनी अपनी भावना के अनुसार स्वरूप में प्रभु दीखते हैं। जनक और सुनयना जी ने पूर्व जन्म में ब्रह्म को दामाद बनाने का वर प्राप्त किया था। नहीं भावना इन दोनों की श्रीराम के प्रति ऐसी थी और

"सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥" (१-२४१)

प्रभु विश्वामित्र जी के आदेश से धनुष भंग करने को जा रहे हैं उस समय वात्सल्य प्रेम ने सुनयना के हृदय को अत्यन्त अधीर किया। सखियों से बिलख कर कहती हैं इतने सुकुमार बालक धनु को तोड़ने में क्योंकर सफल होंगे और सखियों के बहुत समझाने पर उनका हृदय शांत हुआ और धनु टूट जाने पर जनक ने राहत की सांस ली

"सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ॥ (१-२५५)
ए बालक असि हठ भलि नाहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥"
सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥ (१-२६३)

(1840)

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥
ब्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी। चिदानंद निरगुन गुनरासी॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥
नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल। (१-३४१)
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥ (१-३४२)

जस राजा तस प्रजा। अब मिथिला निवासी नर नारी बालकों के भगवत्प्रेम का रस पीया जाये। उनकी प्रभु दर्शन के लिये आन्तरिक अकुलाहट छुपना जाने प्रभु से छिप न सकी। भाव-वश्य प्रभु के हृदय में भी पुरवासियों की इस अकुलाहट से भक्त वत्सलता उभड़ पड़ती है और गुरु से आज्ञा ले लक्ष्मण को नगर दिखाने के बहाने मिथिला की सड़कों पर प्रभु चल पड़ते हैं। गुरु यह रहस्य ताड़ गये और अपना दर्शन कराकर सबके नयनों को सुफल करने की सम्मति देते हैं। भगत बछलता हियँ हुलसानी॥ करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ॥ (१-२१८)

(1841)

निकल पड़े जनरंजन सानुकूल प्रभु भक्तों की एक गई मिलास पूरन। बिजली की तरह फैल गया शहर में समाचार कि श्याम और दोनों भाई शहर देखने चले आ रहे हैं। बालक समूह लग पड़े प्रभु के संग और लगे विभिन्न सड़कों से प्रभु को लेजाने। जिन सड़कों भी प्रभु जाते सड़कों पर कतार बांधे पुरुष व स्त्रियां, खिड़कियों, छज्जों पर ही लगी रहना, रहना भर जाते। कहीं कोई स्वर्ण थालों से आरती उतारता है, कहीं अक्षत चंदन द्वारा स्वागत होता है, कहीं अनेक प्रकार के सुगंधित पुष्पों की वर्षा हो रही है, कहीं शंख ध्वनि तो कहीं कोकिल कंठ से दीनजन गायन गा रहा है। इसी विविध प्रकार से उस सुंदर रघुकुल का अपनी अपनी रुचि अनुरूप सत्कार और प्रेम प्रगट कर रहे हैं। प्रभु भी पीताम्बर पहने, कानों के कुंडल, गले में माला, भाल पर चंदन तिलक, सिर पर टोपी, काले काले घुंघराले केशों वाले और मधुर मधुर मुस्कान भरे मुखड़े से इधर उधर देख देख रहे हुए सबों के चित्त को चुराते हुए गजगति चल रहे जा रहे हैं।

(1852)

जिधर भी प्रभु जाते हैं जन समुदाय द्वारा उपलब्ध सुंदर मूरत को देख उल्लसित विभोर हो जाता है जिस प्रकार अति दरिद्र वस्तु सम्पत्ति पाकर प्रफुल्लित हो जाता है। मन अपनी निज भावना के अनुसार प्रभु को देख रही है। सारे नर नारी समुदाय की प्रबल इच्छा है कि सीता के साथ इनका विवाह हो जाता तो इस मिस बीच बीच में जब जनक बुलाते तब हमें भी इनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो जाता फिर धनु की गुरुता को विचार कर मन में शंका उठती कि ताड़का और सुबाहु मारन की रक्षा एवं अहल्या उद्धार का उदाहरण दे देकर इनकी प्रभुता का बखान करके आपस में एक दूसरे को ढाढस बंधाते। जहां प्रभु जाते इसी प्रकार आनंद का समा बंध जाता। इस सारे शहर में घुमा कर बालक वृंद प्रभु को धनुष यज्ञ शाला में ले जाते हैं और बिना किसी भाव या संकोच के प्रेमवश अपनी अपनी रुचि के अनुसार उनका हाथ पकड़ पकड़ कर विविध वस्तुओं और स्थानों को दिखाते हैं और प्रभु भी उनको संतुष्ट करने के लिये

1843

[और बातें] आजा कर मुनि विस्मय प्रकट करते हैं और ऐसे मधुर शब्दों में बड़ाई करते हैं इस प्रकार निम्नलिखित बातों के सुख पहुंचा कर विश्वामित्र जी के पास चले जाते हैं

"कहि बातें मृदु मधुर सुहाई। किए बिदा बालक बरिआई॥
(१-२२५)

दूसरे दिन प्रातः गुरु के पूजा हेतु फूल लेने जब जनक जी की पुष्पवाटिका में फूल तोड़ते हैं तब सीता जी गौरी पूजन को आई थी उस समय एक सखी सखी उधर को निकल गई जहाँ प्रभु फूल तोड़ रहे थे। वह सखी उनको देख उनकी सुंदरता पर मुग्ध हो हाँफती काँपती सीता के समीप जाती है उससे सब सुन कर सारी सखियाँ हर्षित हो गयी। एक सखी बाल काल के सुन्दर मन को लुभाने वाली छटा का वर्णन करके उनकी सुंदरता की सराहना करने लगी और सीता सहित सारी सखियाँ प्रभु की ओर चल पड़ीं। उन्हें देख कर सीता जी प्रेम विभोर हो जाती है। हृदय में प्रभु की स्यामल मूरत को अंकित कर लेती है एवं उन्हें पति रूप में प्राप्त करने की कामना से वापस जाकर

1844

पार्वती जी से प्रार्थना करके वर याचना करती हैं

"मोर मनोरथु जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेहीं॥ (१-२३६)

जब धनुष यज्ञ शाला में प्रभु पहुंचते हैं सारे पुरवासी अपने अपने आवश्यक कार्यों को छोड़कर अति व्याकुलता पूर्वक भाग कर वहाँ पहुंचते हैं। इस तरह बालक जवान वृद्ध सभी नर नारियों की अपार भीड़ हो जाती है और प्रभु दर्शन करते ही रहते हैं निर्निमेष अघाते ही नहीं। अपनी अपनी रुचि के अनुसार रूप में साकार ही साक्षात दर्शन पा रहे हैं

निज निज रुचि रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा। (१-२४१)
राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें।
एहिं लालसाँ मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू॥
(१-२४६)

विवाह के बाद जब बरात विदाई का समय आता है पुरवासी बरात के चले जाने की कल्पना मात्र से ही विकल होकर बिलख उठे।

"पुरबासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परस्पर बाता।
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने
(१-३३३)

(1845)

"प्रेमबिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु॥" (१-३३८)

मनुष्य ही नहीं खग मृग पशु पक्षी सभी व्याकुल हो उठते हैं। जीव मात्र चाहे वे किसी भी देह धारण कर रखे हों श्री सीतारामजी की विरह कल्पना से व्याकुल हो उठे। यह है जीव और पर ब्रह्म का आन्तरिक प्रेम।

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥
भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती॥
(१-३३८)

(1846)

सं॰ सं॰ 76

11/10/83

— वेदतत्व —

नामकरण के समय चारों भाइयों को श्री राम, भरत, शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण नाम रखने के बाद त्रिकालज्ञ वशिष्ठ ने महाराज दशरथ से कहते हैं - तुम्हारे चारों पुत्रों का नाम जन्म-राशि के अनुसार नहीं रखा इसका कारण है कि ये चारों ही वेद तत्व हैं तुम्हारी भक्ति-समाधि के फल रूप प्रभु भाव को प्राप्त हैं"। वेदतत्व प्रणव एकाक्षर ब्रह्म है 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' (गीता ८,१३) परन्तु वह अ + उ + म अर्द्धमात्रा द्वारा ख्यात है (ओम = अउम् = अ + उ + म + अर्धमात्रा) इसी से वही चारों वही चारों पुत्र हैं (मा॰पी॰ पृष्ठ 71) वेद इन्हीं का गुणगान करते हैं, वेद का सिद्धांत ये ही है। मानस में उत्तर कांड में प्रभु के राज्य तिलक के बाद वेदगण बंदी वेष से आकर प्रभु का स्तवन (स्तुति) करते हैं तब स्वयं कहते हैं

"तै कहहूँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।।

(७-१३-६)

ये चारों ही ना न किसी न किसी रूप में वेद में आये हैं (मा.पी. पृ 70)

विश्व के उपकारार्थ चतुर्व्यूह अवतार है- विश्व के आनन्द दाता श्री राम, विश्व का भरण-पोषण कर्ता भरत, विश्व के शत्रु नाश कर्ता शत्रुघ्न, विश्व के धारण कर्ता लक्ष्मण जी हैं (मा.पी.पृ. 67)

"श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहसशीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥"
2-126

श्री राम दयादृष्टि से सब में रमते हैं एवं शोभामय अपने रूप में सब को रमाते हैं (पृ. 86)

श्री राम अखिल ब्रह्मांड नायक जगदीश्वर पर-ब्रह्म स्वयं हैं। रघुनाथ जी और उनके अंश त्रिदेव के अवतार हैं। आनन्द सिंधु, सुखराशि, सुखधाम आप साक्षात् ब्रह्म राम हैं; विश्व भरण पोषण करने वाले विष्णु भरत हैं; जिनके

(1848)

स्मरण प्रभु से शत्रु का नाश है यानि संहारकर्ता यानि श्रीमान शत्रुघ्न हैं; और जगत के आधार यानि उत्पादक यानि ब्रह्म लक्ष्मण है (मा.पी. पृ-66)

"इच्छामय नरवेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें।।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता।
जो आनंद सिंधु सुख रासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्राम।
बिस्वभरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।।
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।(पृ- १९६)

श्री राम विष्णु हैं शेषशायी नारायण। भरत उनके कर के शंख; उनके कर में रहनेवाला शत्रुघ्न। एवं शेषजी लक्ष्मण हैं सब जगत के आधार। ये चारों ही वेद तत्व हैं (मा.पी. पृ 66)

(849)

संलै० सं 77

12/10/83 — मानस में सतीत्व की महिमा —

पतिव्रता स्त्री के सतीत्व में कितनी प्रबल शक्ति होती है उस पतिव्रता चरित्र की शक्ति से उसका पति कितना अजय हो जाता है इसका उदाहरण जलंधर दैत्य है। जलंधर शिव की कोपाग्नि से समुद्र में उत्पन्न हुआ था। पैदा होते ही इतने जोर से रोने लगा कि देवता व्याकुल हो उठे। समुद्र ने उसे अपना पुत्र बताकर ब्रह्मा को दे दिया। गोद में जाते ही उसने ब्रह्मा की दाढ़ी के बाल इतनी जोर से खींचे कि उनके आंसू निकल पड़े। इसकी पत्नी का नाम वृन्दा था। वह बड़ी उच्च कोटि की पतिव्रता थी। वृन्दा के पतिव्रत की शक्ति के बल पर इसने अमरावती पर कब्जा कर लिया। सारे देवता इससे हार गये। स्वयं शिव जी ने इससे युद्ध किया। भगवान रुद्र के युद्ध के समय वृन्दा ने अपने पति के प्राण बचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा प्रारम्भ कर दी। उसकी अद्भुत सतीत्व शक्ति के प्रभाव से शिव जी उस असुर को नहीं जीत सकते थे। तब धर्म की मर्यादा व

1850

नाश नहीं कर सके तब उन्होंने भगवान का स्मरण किया। भगवान सहायता के लिये पहुंचे। और छल पूर्वक उसका व्रत भंग किया।

शंभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥ (बा-१२३)

किस प्रकार व्रत भंग किया इसमें मतभेद है। वृन्दा ने पूर्व जन्म में पति रूप से भगवान को प्राप्त करने के तप करके वर प्राप्त किया था। वृन्दा ने भगवान को देखते ही पूजन छोड़ दिया और पूजा छोड़ते ही जालंधर के प्राण निकल गये।

भगवान यति बनकर वृन्दा के घर के पास घूमने लगे। वृंदा ने पूछा मेरे पति रण जय पायेंगे। यति बोला वह तो मारा गया। वृंदा बोली मेरा पातिव्रत्य रहते कौन मार सकता है। यति ने अपना हाथ फेर देखा। जलंधर के शरीर के दो टुकड़े वृंदा के समीप आ गिरे। यति बोला इनको तू जोड़ दे वह जी उठेगा। वृन्दा के छूते ही यति आप प्रवेश कर जलंधर रूप हो उसका पातिव्रत्य भंग किया। तब इधर शिवजी ने जलंधर को मार डाला

वृंदा को यह बात तुरंत मालूम हो गयी। तब
उसने कोप करके भगवान को शाप दिया। तब
भगवान ने प्रभु के लिये पूर्व जन्म की तपस्या
की का पालन करके उसको संतोष किया।
शापवश — तुमने मेरा सतीत्व भंग किया है तुम
पाषाण हृदय हो अतः तुम पाषाण हो जाओ।
शिवजी ने प्रकट होकर कहा तुम्हारे पूर्व तप की
पूर्ति के लिये ही नारायण ने यह किया। तुम
तुलसी वृक्ष बनोगी और भगवान को सदा
ही अति प्रिय रहोगी। तब से भगवान
शालग्राम और वृन्दा तुलसी हुई और
विष्णु की किसी भी विग्रह के पूजन में तुलसी
चढ़ाया जाता रहा है और तुलसी से प्रभु प्रसन्न
होते हैं। रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी
(१-३१) अनुसूया जी ने भी पातिव्रत्य का
महत्व बताते समय सीता जी से कहा है
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि
प्रिय (३-५) चारों वेदों ने सतीत्व की
महिमा में गाया है।

यह सती स्त्री के पातिव्रत्य शक्ति का ही विलक्षण प्रभाव है जिसकी शक्ति का अतिक्रमण स्वयं महाकाल शंकर भगवान भी नहीं कर सके एवं स्वयं परब्रह्म ने भी अतिक्रमण की हिम्मत तक नहीं की पहले छल का आश्रय ले वृन्दा के पातिव्रत्य को नष्ट करना पड़ा।

जिस प्रकार छल द्वारा वृंदा के पति से उसका वियोग कराया गया उसी प्रकार अगले जन्म जलंधर रावण जन्म पाकर यति वेश में सीता का हरण कर श्री राम का पत्नि वियोग कराया —

"तहाँ जलंधर रावण भयऊ।
"सुन बीच दसकंधर देखा।
आवा निकट जती के वेषा।
क्रोधवंत तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाई।"

(उ० २८)

(१) रघुपतिं शरणं प्रपद्ये (भाग स्कं.९ अध्या ११ श्लो २९)

(२) ईशावास्यम् इदम् सर्वम्
यत् किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा(:)
मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

॥ श्रीराम ॥

श्रीराम जय राम जय जय राम।
हरि शरणम् हरि स्मरणम् हरि चरणम्।

उत्कण्ठा
"पुष्प"
छठी कापी

मैं सेवक समरत्थ को, कभी न होय अकाज।
पतिव्रता नंगी रहे, वाही पती को लाज॥
रच्छक जो जीव का नींद में पेट मैं।
वही रच्छक सब जीव का सदा जग मैं॥
कर से करम करे बिधि नाना।
मन राखहु जहाँ कृपा निधाना॥
न आने साधन, न पद रचना को।
है अपर्पित निर्बुद्धि पुष्प ये अपापको॥
कर स्वीकार करो सफल जन्म जन्म को
प्रभु पद सिर सम स्नेह धर कर अपापको 'चातक'
पृष्ठ संख्या १८५१ से
पद संख्या ३८९ से
संकलन संख्या ७८ से

शंकर 'चातक'

सं० सं० ७८ (185)

30/12/83

योगक्षेम

"योगक्षेम का अर्थ प्राप्त की रक्षा एवं अप्राप्त की प्राप्ति करना" होना चाहिये। "योगक्षेम वहाम्यहं" गीता में कहे गये भगवान श्री कृष्ण के वचन का अर्थ बहुधा करते हुए पाये जाते हैं कि प्रभु अपने भक्तों की सांसारिक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं एवं उनकी रक्षा एवं पूर्ति करते हैं। किन्तु यह भाव ठीक नहीं जंचता क्योंकि भगवद्भक्तों के लिये सांसारिक पदार्थों की कमी या पूर्ति कुछ भी महत्व नहीं रखा करती। उनके साध्य प्रभु-प्रेम, प्रभु चरणारविन्दों की प्राप्ति ही उनको अभीष्ट है अतः भगवान श्री कृष्ण का अपने अनन्य भक्त अर्जुन के प्रति कहे गये इस उक्ति का पारमार्थिक अर्थ और आध्यात्मिक युक्ति संगत जंचता है कि भगवत्पथ के पथिक जहाँ तक

पहुंचे चुके उससे उन्हें गिरने नहीं देते
एवं लक्ष्य-पूर्ति की दिशा में उनकी
बागडोर सतत प्रभु खींचते रहते हैं
जब कि उन भक्तों के हृदय कर्तृत्वाभिमान
नहीं आता- अभिमान का नाश तो
प्रभु अवश्य करते हैं कारण यह
अत्यधिक हानिकारक है। यदि एक
ही जन्म की अवधि क्या, जन्म जन्मांतर
प्रभु बागडोर खैंचते सँभाले रखते हैं
जब तक लक्ष्य तक पहुंच न जाय।।
अवश्य करता है भक्त के हृदय में
भावना की "अहं यन्त्र भगवान यन्त्री
मम दोषो न दीयताम्"।।

२।१।८५

मैं सेवक समरत्थ कौ कभी होय अकाज।
पतिव्रता नंगी रहै वाके पती कौ लाज॥

सुन पुकार बन बसन राख्यो द्रुपदी की लाज।
उठा चक्र तज अपनो पन राख्यौ भीष्म की लाज॥

सिकार हुन्डी भर भात राख्यो नरसी की लाज
सजाय मुरव मैं रन छोड़ सार्यो वीर काज॥

बना सरना मुकन्द बिभिसन के कुल दियो तू लाज।
अपना अंगद रावन सभा डाल्यो सु बराज॥

कूद सलान्ह सागर भर द्वार आय पड़ा रघुराज
सँकर काज सँवारतौं हिचक क्यों रह्यो आज

(1854)

2.8.79

5/1/84

प्रेम तत्व

यहाँ प्रेम का मतलब पारलौकिक अर्थात भगवत्प्रेम से है।

संत कबीरदास जी ने कहा है

"पोथा पढ पढ सब मुआ, पंडीत भया न कोय। ढाई अक्षर का पढे सो पंडीत होय।।" इन पंक्तियों में प्रेम की महत्ता कूट कूट कर भरी है।

इस ढाई अक्षर के प्रेम की महत्ता, तरीका एवं तत्व गोस्वामी तुलसीदास जी ने उदाहरण देकर श्री रामचरित मानस में इतने स्पष्ट रूप से समझाया है।

शृंगबेरपुर गंगा तट पर नाविक केवट मचल जाता यहाँ तक कि प्रभु की रघुनाथ एवं महाराज दशरथ की शपथ तक ले लेता है पर चूँकि उसका प्रेम हृदय था प्रभु खुद मानते की जानते हैं सो आत्म-समर्पण रख कर चलाते हैं

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन।।
एवं चित्रकूट-वासिओं के सुमधुर बोल किरातों की
बातें बड़े प्रेम से सुनते है तब बाबा तुलसीदास
जी के हृदय के उद्गार निकलते है
"रामहि केवल प्रेम पिआरा।
जानि लेउ जो जाननिहारा।। (२-१३७)
अतः भगवत्प्रेम कभी व्यर्थ नहीं जाता प्रेमी
भगवत्कृपा प्राप्त करता ही करता है। ~~भक्त~~

जिसका जिस पर अधिक प्रेम होता है
हरदम वह उसके मन में बसा ही रहता है
सतत स्मरण बना ही रहता है अपने प्रेमपात्र
की स्मृति कभी छूटती ही नहीं जैसे कामी
अपनी प्रियतमा एवं लोभी धन का ध्यान नहीं
छोड़ सकता है। गोस्वामी जी राम के प्रति ऐसा
ही प्रेम मांगते है
"कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।। (७-१३०)

(1856)

भगवान शंकर का श्री राम प्रेम इतनी उच्च कोटि का है कि "तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग आराती (1-108)" जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा।। (1-75)" फल मे है होता है कि श्री राम को भगवान शंकर के समान कोई प्रिय नहीं है "सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।" (6-2)

अपना प्रेमी भक्त श्री राम को कितना प्रिय होता है यह भरत लाल के लिये भी मिलता है। इधर राम के वनवास अवधि मे उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर अवध रहते हुए भरत की दशा है "राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात" (7-1) जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती।। (7-2) इससे स्पष्ट झलकता है भरत के हृदय में श्री राम का। इसकी प्रतिक्रिया होती है भगवान राम

के हृदय में भरत से मिलने की छटपटी
के रूप में "भरत दसा सुमिरत मोहि
निमिष कल्प सम जात। देखौं बेगि सो
जतनु करु सखा। निहोरउँ तोहि।। (६-
११६) "सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि
पुनि पुलक सरीर (६-११५)। जब दाहिने
अंग फड़कते हैं तब राम इसका अर्थ भरत
मिलन ही लगाते हैं "भरत आगमनु सूचक
अहहीं।। भरत सरिस प्रिय को जग माहीं (२-७)

जानकी जी धनुष यज्ञ के अवसर पर
श्री राम को प्राप्त करने के लिये जब सब को
मन ही मना कर हार जाती है तब अन्त में
धनु राम के धनुष न तोड़ने पर मन ही
मन अपना प्राण का त्याग करने का
निश्चय कर लेती है तब अंतर्यामी राम
जान कर धनुष तोड़ कर जानकी के
जीवन रक्षा का निश्चय करते हैं"
"प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना।

कृपानिधान राम सबु जाना।। सियहि बिलोकि लखेउ धनु कैसें। चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसें।। (१-२५९)
वन गमन के पूर्व जब साथ ले जाने में प्रभु आनाकानी करने लगे तब सीताजी ने अपने प्राणों की ही बाजी लगा दी- "प्रान
तब प्रभु साथ ले जाने को तैयार हुए
"सो प्रभु निजजन वियोग दुख न सहिहहिं पाँवर प्रान।। (२-६७)" देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना।। कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा।। (२-६८) गंगा तट पर पिता का संदेश सुनकर श्रीराम जब अवध लौट जाने को समझाते हैं तब सीता का उत्तर है "तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी।। (२-९७) यह है सीता का श्री राम-प्रेम फलस्वरूप सीताजी प्रभु को अतिसय प्रिय हैं जिसका सूत्र "जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय

करुनानिधान की।। (2-25) इत्यादि इत्यादि अनेक प्रसंगों द्वारा तुलसी दासजी ने भगवत्प्रेम का स्वरूप एवं महिमा रूप चरितमानस में उदाहरणों द्वारा समझाया है।

अब देखिये भगवत्प्रेम का तत्व बता रहे हैं एवं यह भी बता रहे हैं भक्त जितना प्रेम करेगा उससे कई गुना प्रेम प्रभु अपने भक्त पर करते हैं। अशोक वाटिका में प्रभु का संदेश पवनसुत जानकी सीताजी को सुना रहे हैं "तुम्ह ते प्रेमु राम कर दूना।। (5-14) तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।। सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु इतनेहि माहीं।" (5-15) यहाँ कितने स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि सतत स्मरण ही प्रेम का तत्व सार है एवं भक्त के प्रेम से कई गुना प्रभु का प्रेम अपने भक्त के प्रति होता है।

(1860)

ये ही नहीं श्रीमद्भागवतकार ने श्री गोपियों के श्रीकृष्ण-प्रेम को भी यूँ ही कहा है। गृहस्थी के सारे काम करते समय भी गोपियाँ श्रीकृष्ण का ही चिन्तन एवं गुणगान करती रहती थीं। उनका मन हर क्षण श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों का रस पीने में मस्त रहता था। नतीजा यह था कि अखिल भुवनपति प्रभु श्रीकृष्ण गोपियों को प्रसन्न करने हेतु उनके यहाँ चुरा-चुरा कर माखन खाते छछिया भर छाछ पीने के लिये उनके इशारे पर नाचते रहते एवं गोपियाँ उनकी मनमोहिनी सूरत देख देख प्रेम विभोर और मस्त रहती।

धन्य है प्रभु का यह भक्त-प्रेम।

श्री राम जय राम जय जय राम॥

हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम्

मं.सं.क्र. ४० (1861)

१०।११।८४

गजेन्द्र मोक्ष

हे गोविन्द राखव सरन!
अब तो जीवन हारे।
नीर पीवन हेत गयौ
सिन्धु के किनारे।
सिंधु बीच बसत ग्राह
लै गयो मझधारे।
चार पहर जुद्ध भयो
टूटत ही पछारे।
नाक कान डूबन लागे
कृष्ण को पुकारे।
द्वारिका में शब्द भयो
गरुड़ तज सिधारे।
ग्राह को मार कर
गजराज को उबारे।
सुर कहें श्याम सुन्दर
आसरे तिहारे।
मेरो तेरो न्याय होवेहै
जमराज के द्वारे।

(1862)

स॰ ल॰ नं॰ 81

14/1/84

मैं तो ठाना हूँ दर्शन तुम्हारे पाना है
छिपे कब तक रहोगे भगवान तुम हमसे
भागे भागे फिरोगे कब तक तुम हमसे

मैंने तुमसे लगन है लगाई खेल मत समझना
मैंने प्रेम की बाजी है लगाई तमाशा मत समझना
मैं जीतूँगा तुम हारोगे तुमको है पाना।

मैंने तुमसे मुहब्बत की है कोई चोरी नहीं की भगवान
दुनियाँ पागल कहे तो ही समझे क्या जाने वो प्रेम लगन
आँख मिचौनी जितनी खेलो फिर भी है पाना

तुमने पापी बहुत तारे हैं सुना है हमने भगवान
कितने पकड़ कंस मारे हैं सुना है हमने भगवान
मुझ पापी को जैसे भी हो तुम्हें है तारना

तीनों लोकों में रहने वाले तुम्हीं हो मेरे मालिक हो
सबकी फरियाद सुनने वाले तुम्हीं हो मेरे मालिक हो
कण कण में घुमने वाले के सम्मुख है [illegible] ॥

(१८६५) सं॰ ले॰ सं॰ ८२

१९-१-८५

प्रातः-स्मरणीया कुन्ती

परमात्मा सर्वेश हैं परम कौतुकी हैं। उनकी इच्छा सर्वोपरि है। उनकी इच्छा एक से अनेक होने की हुई तब उत्पत्ति पालन और संहार के लिये क्रमशः ब्रह्मा विष्णु महेश की सृष्टि हुई (ब्रह्म) ब्रह्माण्ड के लिये अगणित अगणितों को और जीव एवं प्रकृति को नाना परम्परा की तरह रच लेता है और कुछ विनोद के पश्चात महाप्रलय कर सब को विलीन कर देता है। खेल करने के लिये विभिन्न प्रकृति के दो की आवश्यकता पड़ती है अतः सुर और असुर का सृजन हुआ एवं जड़ एवं चेतन समस्त गुण और दोष का सम्मिश्रण किया "जड़ चेतन गुण दोष मय विश्व कीन्ह करतार" (१-६) "मुनि कर हित मम कौतुक होई (१-१२९)" "अगरहि प्रभु कौतुकी कृपाला।" (१-१३६)।

हरि इच्छा बड़ी बलवती है "भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान" (१-१२८)

हरि इच्छा के सामने किसी की कुछ नहीं चलती "राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई। (१-१२८) "होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा। (१-५२) "हरि इच्छा भावी बलवाना (१-५६)" "राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥ २-२५८ "नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥ (४-७) "उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥ (४-७)

यह जगत एक नाटक प्रभु की नाट्य शाला है। जैसी लीला प्रभु करना चाहते हैं वैसी ही उसी के अनुरूप उतना ही पाट खेलने को जीव संसार के रंगमंच पर उतरते हैं सूत्रधार प्रेरक चालक तो एक मात्र प्रभु ही बाकी सारे तो अभिनय कर्ता गुड़िया मात्र है। जब जैसी लीला करनी वह ठानता है उसके बहुत पहले से ही वैसी ही परिस्थितियाँ

हो जाती हैं। उन अप्रतिम चरित्रों को विभिन्न ऋषि मुनि उचित समय पर शाप या आशीर्वाद दे देते हैं - इस तरह के अनेकानेक दृष्टांत रामायण महाभारत में भरे पड़े हैं।

ऐसा की श्री राम द्वारा नर-लीला के बहुत पहले ही नारद मुनि ने श्री हरि को शाप दिया (१-१३७/१३८) दोनों रुद्रगणों को पहले तो शाप दिया (१-१३५) और फिर उन पर अनुग्रह किया कि श्री हरि के हाथ तुम्हारी मृत्यु होगी (१-१३९) इस तरह प्रभु की नर-लीला की रूपरेखा की। श्रीराम को वन भेजने के लिये मंथरा की मति शारदा द्वारा फेरी "लख किछु [illegible] राम [illegible] जानी" (२-२१८) और तिलक में बाधा डलवायी। सूपनखा द्वारा रावन को प्रेरित करा कर सीता हरन कराया "जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा" (३-२१) इस तरह [illegible] रावन आदि सारे

रावण का उद्धार कराया। यही नहीं समुद्र पर पुल बाँधा जायेगा इसलिये नील व नल दोनों भाइयों को बहुत पहले ही ऋषि द्वारा आशीर्वाद दिलवाया कि उनके छूने से पत्थर जल पर तैरने लगेंगे "नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरकाईं ऋषि आसिष पाई॥ तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥" (५-६०) इत्यादि इत्यादि।

इसी प्रकार द्वापर में प्रभु के मन में महाभारत रूपी विश्व-युद्ध करा कर तत्कालीन सारी उपस्त्र विद्या एवं समस्त वीरों का नाश कराने की इच्छा हुई तब विभिन्न पात्रों को भेजा उनमें एक कुन्ती भी है। सुनकर आश्चर्य होगा कि इसमें कुन्ती का क्या पार्ट है। और कुन्ती किस प्रकार महाभारत का कारण बनी।

(1868)

यदुवंश में महाराज शूरसेन को १० पुत्र और ५ कन्यायें हुई। भाइयों में कृष्ण के पिता वसुदेव जी एवं बहनों में पृथा सबसे बड़े थे। शूरसेन की फुफेरे लड़के कुन्ती भोज को संतान नहीं थी अतः कुन्ती भोज के अनुरोध पर पृथा को पिता ने उन्हें (कुन्ती भोज) गोद दे दिया इस प्रकार पृथा का नाम कुन्ती पड़ गया। एक बार कुन्ती भोज के यहां महर्षि दुर्वासा ने एक वर्ष व्यतीत किया। दुर्वासा की सेवा कुन्ती ने बड़ी सावधानी से की तब प्रसन्न होकर दुर्वासा ने अपनी ओर से ही बिना मांगे स्वतः ही अथर्ववेद का एक मंत्र दिया कि जब इस मन्त्र को पढ़ कर जिस देवता का आह्वान करोगी वही देवता आकर तुम्हें गर्भ स्थापित करेगा। स्वच्छंद विवाह के पहले ही कौतुहलवश मन्त्र पढ़कर सूर्यदेव का आह्वान किया मंत्र की परीक्षा लेनी सूर्य से उसके कर्ण की उत्पत्ति हुई।

कन्या काल में पुत्र होने के कारण अपवाद
के भय से उसने नवजात कर्ण को धाय
के मारफत नदी में प्रवाहित करा दिया।
विवाह के पश्चात उसी मंत्र के
प्रभाव से कुन्ती को धर्मराज से युधिष्ठिर
पवन से भीम एवं इन्द्र से अर्जुन हुए
नारि सुलभ लज्जा और भय के कारण
कर्ण की जन्म की बात कुन्ती ने गुप्त ही रखी।
कर्ण वीरता एवं धनुर्विद्या में अर्जुन से बढ़कर
था अतः अर्जुन को ईर्ष्या होने लगी और उसका
जानी दुश्मन हो गया और एक बार अपनी
प्रसिद्धि हेतु सभा में कर्ण का महा अपमान कर दिया
अतः एव कर्ण भी उसका जानी दुश्मन हो
गया। इधर कर्ण की वीरता देख पांडवों को
पराजित करने के उद्देश्य से कर्ण को अपना
अभिन्न मित्र एवं विश्वास पात्र बना लिया। एवं
उसकी सलाह से चलने लगा। कारण कौरव
पांडवों से अपने को बहुत कमजोर समझते थे
इस तरह कुन्ती के ही दोनों पुत्र दोनों विरोधी

दोनों के मुख्य वीर होने के कारण महाभारत के
प्राण थे और भगवान कृष्ण इस भयंकर नर-
संहार को कराना चाहते ही थे अतः उन्होंने
भी बहुत समय तक इस भेद को गुप्त ही रखा।
यदि युधिष्ठिर को यह मालूम हो गया
होता कि कर्ण उन्हीं का बड़ा भाई और
उनकी माता का ही प्रथम संतान है तो
अवश्य ही धर्मराज युधिष्ठिर इस महायुद्ध
को कभी नहीं होने देते और कर्ण से
नहीं युद्ध करते। इस प्रकार इस भेद को गुप्त
रख कर कुन्ती महाभारत का एक कारण
बनी। युद्ध खतम होने के बाद जब धृतराष्ट्र
और गान्धारी वन जाने लगे तब कुन्ती
भी जेठ जेठानी की सेवा करने उनके साथ
ही वन को चली गयी। युधिष्ठिर के बहुत
अनुरोध करने पर भी नहीं रुकी और
युधिष्ठिर को उसने कहा 'मैंने अपने सुख
के लिये तुम्हें नहीं लड़वाया था, क्षत्रिय
धर्म सिखाया था'।

इस विषय में कुन्ती को दोषी ठहराना सर्वथा अनुचित यह तो उस पर वह नागर भगवान श्रीकृष्ण की इच्छा से हुआ है कुन्ती तो अनजान में वही अभिनय कर रही थी जिस के लिये परमात्मा ने उसका सृजन किया था।

संधी प्रस्ताव असफल होने पर एकान्त में जब कृष्ण ने करण को इसके जन्म का भेद बताकर कुंती पुत्र होना कहा एवं पांडवों से मिल जाने को अनुरोध किया तब करण ने कृष्ण से कहा था हे मधुसूदन आपकी आन्तरिक इच्छा है नहीं होगा यदि आपकी आन्तरिक इच्छा संधि करा कर इस युद्ध को रोकने की होती तो आप की आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता है आपकी इच्छा सर्वोपरि है। जो आप कराना चाहें तो उसके लिये कौन मना कर सकता है। दुर्योधन ने ठीक ही कहा है —

(1472)

"यन्त्रस्य मम दोषेण क्षम्यतां मधुसूदन!
अहं यन्त्र भवान् यन्त्री मम दोषो न दीयताम्॥"

महाराज पाँडु की कुन्ती और माद्री दो रानियाँ थीं। पाण्डु शाप के कारण स्त्री-संभोग नहीं कर सकते थे। माद्री के संतान नहीं थी अतः कुंती ने वह मंत्र उसे बताया जिससे उस मंत्र के प्रभाव से अश्विनी कुमार से माद्री को नकुल और सहदेव हुए। पाण्डु की मृत्यु पर माद्री ने पाँचों बच्चों के पालन के लिये कुंती को सती होने से रोका। कुंती ने माद्री के पुत्रों को अपने पुत्रों के समान ही पाला यहाँ तक कि राक्षस द्वारा खाये जाने के लिये ब्राह्मण पुत्र के बदले भीम को ही भेजा माद्री-पुत्र को नहीं।

(1873)

सं॰ल॰सं 83

26/1/84

कैसे तुम से लूँ उतराई मैया
नहीं बता दो राम। टेक

मैं गंगा तट नाव खिवैया।
तुम भवसागर पार लगैया॥
भेद रहा दोनों में फिर क्या
तुम्हीं बतादो राम॥ कैसे....

जब दोनों का एक ही धन्धा
तू बिताई क्या मैं उपन्धा।
हँसी कराती है जग में बाधा
तुम्हीं बतादो राम॥ कैसे....

जाति जाके जो भाई बिरादर
कहे ज्ञात से मुझको बाहर।
करली मैंने हलकाई क्या
तुम्हीं बतादो राम॥ कैसे....

1874

धोवी धोवी की न धुलाई
नाई से लेता नहीं नाई।
मैं ही फिर लूँ उतराई क्यों
तुम्हीं बताओ ज्ञान। कैसे-

भजन सं 84 (1875)

२६/१/८४

हे नटवर निराली है लीला तुम्हारी।
समझ कौन सकता है महिमा तुम्हारी

भिखारी है कोई तो कोई है राजा।
नचाती नटों को है माया तुम्हारी।।

जिसे चाहे जैसा बनाकर मिटा दो।
यह सब खेल है नाट्यशाला तुम्हारी

नहीं हम तुम कभी जो ग्राते हो लायक।
तो ले ग्राती है तुमको इच्छा तुम्हारी।।

(876)

सं॰ लै॰ सं॰ 85

२६/१/८४

हम तुम्हें देखा करें

यों ही निसदिन श्यामसुन्दर
हम तुम्हें देखा करें ।।
तुम चाहे देखो न देखो
हम तुम्हें देखा करें ।।
सब सुकृत फल हैं निछावर
मेरे मन इस भाव पर ।।
लोक और परलोक की
चिन्ता कुछ नहीं है मुझे
चाह बस इतनी ही प्रियवर
हम तुम्हें देखा करें ।।
नहीं निकट के जोग हैं तो
इतना ही कर दिजिये
दूर ही बैठे नयन भर
हम तुम्हें देखा करें ।।
हैं सब कहीं ~~कहो~~ हरिजन हैं में
हैं यह अपने रूप से
सब यही कहता है आकर
हम तुम्हें देखा करें ।।

सं० नं० 86 (1877)

12/2/84

नाथ मैं थाँरो जी थाँरो।
चोखो, बुरो, कुटिल अरु कामी, जो कुछ हूँ सो थाँरो

बिगड्यो हूँ तो थाँरो बिगड्यो, थे ही मनै सुधारो।
सुधर्यो तो प्रभु सुधर्यो थाँरो, थाँ सूँ कदे न न्यारो।।

बुरो बुरो, मैं भोत बुरो हूँ, आखिर टाबर थाँरो।
बुरो कुहाकर मैं रह जास्यूँ, नाँव बिगड़सी थाँरो

थाँरो हूँ, थाँरो ही बाजूँ, रहस्यूँ थाँरो थाँरो।।
आँगळियाँ नुँह परै न होवै, या तो आप बिचारो।

मेरी बात जाय तो जाओ, सोच नहीं कछु म्हारो।
मेरे बड़ो सोच यों लाग्यो, बिरद लाजसी थाँरो।।

जँचे जिस तरियाँ करो नाथ, पण मारो चाहे त्यारो।
जाँघ उघाड़्याँ लाज मरोगा, ऊँडी बात बिचारो।।

(1878)

सं. लें. सं. 87

२/२/५/84

इष्ट

उपासना के लिये एक इष्ट का होना अत्यावश्यक है। जिसने देवता हैं और जिस शक्ति वाले हैं उनकी पूजा आदि नियम पूर्वक होने पर भी जैसे भौतिक फल देने का अधिकार प्रभु ने उन्हें दे रखा है उसका ही फल दे सकते हैं। किन्तु भगवत्प्राप्ति देने का अधिकार उन्हें नहीं है यह तो केवल प्रभु श्री रामचन्द्र जी या श्री राधाकृष्ण जी ही दे सकते हैं।

जिस प्रकार सिर में आँख एक ही ओर होने के कारण जीव सिर्फ सामने ही देख ही देख सकता पीछे पीठ की ओर नहीं इसी प्रकार प्रभु की ओर मुख किये बिना प्रभु-प्राप्ति असम्भव है और इसके बिना जन्म जन्मान्तर में चक्कर काटता ही रहेगा अतः प्रभु को इष्ट बनाना नितान्त आवश्यक है।

"एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय" / ऐसे सभी देवी देवता उसी प्रभु के स्वरूप हैं किन्तु एक को इष्ट होने से अपना ममत्व उसी में इकट्ठा हो जाता है अतः एक जिसमें मन लगे उसी का सच्चा समर्पण दिल से करने से साधना पूरी होती है किन्तु हर अन्य प्रतीक का अपमान नहीं करना चाहिये।

एक ही परिवार के भिन्न भिन्न व्यक्ति अपना अपना इष्ट अलग अलग रख सकते हैं अपनी रुचि अनुसार। अपने इष्ट की पूजा सेवा स्वयं ही करनी चाहिये। एक बानि करुणानिधान की सो प्रिय जाके गति न आन की॥ (३-१३) / गीता में प्रभु अर्जुन से कहते हैं "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" ऐसा करने से "योगक्षेमं वहाम्यहम्"॥ यानि अपने इष्ट की शरण में जाना चाहिये।

(1880)

प्रभु कहते हैं "सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं (4-47) जो सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥ (4-43) नाम का जप हर समय

L भोजन करना है — टट्टी पेशाब L करते समय भी करना है ताकि कोई श्वास भी स्मरण से खाली नहीं जावे। प्रभु तो कृपा करने को बैठे हैं पर कोई जीव उनके सामने सन्मुख (यानि उनका स्मरण करे) जावे तब तो वे कृपा करें। नाम स्मरण यानि शरण जाने वाले के सारे पाप-ताप नष्ट करके प्रभु उसे शुद्ध बना कर भजन के योग्य बना लेते हैं। जो भगवान का भजन करते हैं भगवान उनका भजन करते हैं।

इष्ट का नाम-स्मरण हर समय करने वाले को अंत समय में कफ, वायु के प्रकोप के कारण यदि विसर भी जाय तो भी

प्रभु उन्हें नहीं बिसारेंगे। दृष्टा के प्रति!
जितना ही प्रेम नष्ट हो जायेगा उतना ही
मन इस हृदय से लगता जायेगा। नाम!
स्मरण में संख्या का हिसाब नहीं
रखना- यदि प्रारम्भ माला से अभ्यास
करना हो तो बिना सुमेर की माला से करे
ताकि संख्या का पता ही नहीं रहे कारण
(1) प्रभु की कृपा क्रिया-साध्य नहीं है सिर्फ
उसकी कृपा-साध्य ही है। (2) गिनती का
हिसाब रहने से हमेशा गिनती को महत्व
दी जाती प्रभु की महत्ता नहीं दी जाती।
(3) गिनती की माला पूरी होने से मन
पर से एक बोझ सा हल्का हो जाता है
(4) मन के अन्दर भावना, अहंकार उठता
है कि मैंने इतने नाम ले लिये (5) ऐसा
लगता है कि प्रभु पर मेरा इतना
एहसान हो गया- फलस्वरूप बदले में
कुछ पाने के लिये अधिकारी इतनी
दूर तक हो गये- इससे भगवत्प्रेम में

(1882)

कमी आपकी है किन्तु भगवान को तो
प्रेम ही प्यारा है यथा हि केवल प्रेम
पियारा (२-१३५) (६) माला में घुमाने
रहने से मन में रहता है कब सुमेरु आने
कब माला घुमाने, घुमाने न होने से
जब भी मन अन्य कार्य में नहीं हो आप
सुमिरन चालू हो जायेगा।

नाम-स्मरण रूपी औषध को साथ
परहित चिन्तन (यानि तत्सुख सेवा)
ही इसका पथ्य है। दूसरों का अनिष्ट
चिन्तन इसका कुपथ्य है एवं हर काम में
प्रभु की कृपा का दर्शन अनुभव करना
ही इसका अनुपान है। परहित सरिस
नाहिं धर्म भाई। परपीड़ा सम नहिं
अधमाई (५-४१) दूसरे को दिये हुए
दान अथवा सेवा की चर्चा किसी से भी
करने से उसका फल क्षय हो जाता है

जो सेवा हममें कुछ उठाकर औरों को सुख पहुँचाती है वह सत्पुरुष सेवा है और प्रभु को अत्यधिक प्रिय है यथा:-

(1) सड़क पर चलते समय जहाँ कांच के टुकड़े या प्याज केले के छिलके पेड़ दी हों उन्हें उठा कर ऐसी जगह डाल आना कि किसी के पैर में न लग न जावें

(2) भूले भटके को रस्ते पर लगाना।

(3) ऊँची बढ़ पड़े अपाहिज या रोगी की सेवा।

(4) निश्चित रूप से भूखा मिल जाये उसे प्रेम से भोजन कराना

(5) प्रातः काल पक्षियों को दाना चुगाना। चींटियों को आटा चीनी डालना।

(6) किसी मंदिर देवता की आरती हो रही है खड़े होकर आरती के दर्शन करना और आरती खत्म होने पर आगे बढ़ना।

(7) भक्त मंडली में प्रेम से प्रभु का कीर्तन करना।

(8) प्रभु को निवेदित किये बिना कुछ भी नहीं खाना कभी भी।

(1884)

(९) किसी देवता के मंदिर में जा जाकर अपने इष्टदेव का ही रूप मान कर प्रणाम करना।

(१०) अपने ईश्वर की लीला उत्सव कहाँ है या अन्य द्वारा किये गये उत्सव में भी शामिल सहायता करना।

(११) नाम स्मरण के बदले में किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करना

(१२) अन्य का आश्रय न लेकर अपने इष्ट का ही आश्रय लेना। ~~प्रभु~~ अपने इष्ट के अलावा अन्य किसी का अपमान भी न करना और न ही कोरा रस धर्म लो उसी को कहा है
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत (४-३)

(१३) प्रभु कृपा का सदैव अनुभव करना। जब प्रभु लगन पूरी लग जाती है तब प्रभु दर्शन होते हैं। जैसे तो मैं जाप सारे छोड़ूँ। तू जब आने वाले

1885

(१४) आत्मा द्रवित होते ही प्रभु ध्यान लगाकर रहते हैं कि अब इस भक्त की कुछ भी इच्छा हो। उसे हम पूरी करें देने हेतु कोई। और है भजन से दिन रैन

(१५) जैसे ही थोड़ा ही साधन बने पर वह नियमित चालु रहने वाला हो।

(१६) प्रभु को याद कर, मृत्यु को प्यार कर

(1886) सं० ले० सं० ४४

२१/५/८४

श्री कृष्ण की बाल्य-काल गाथा
(श्री मद्भागवत से संकलित)

प्रभु की लीलाएं अलौकिक एवं अपरम्पार होती मनुष्य की बुद्धि उनकी महिमा समझ नहीं सकती

जन्म लेते ही कृष्ण भगवान ने पहले तो चतुर्भुज ही माता पिता को अपने दिव्य परन्तु रूप का दर्शन दे कर पिता को आदेश देना कि मुझे प्रात गोकुल ले चलना। उनके जाते समय बन्दी गृह के द्वारपाल आदि का अचेत होकर सो जाना। घनघोर वृष्टि के बावजूद यमुना जी का पानी घटकर उन्हें मार्ग दे देना।

शैशवावस्था में ही पूतना राक्षसी का वध कर डाला जो कंस की भेजी हुई थी स्तन पान करके (भागवत १०.६)

केवल तीन महीने की आयु में शकट के नीचे लेटे पैर उछाल कर शकट को गिरा कर तोड़ डाला (१०-७)(१०-२८

बवंडर रूप तृणावर्त राक्षस, जब इन्हें उड़ा कर आकाश में ले गया इन्होंने आकाश में ही उसे मार डाला (१०-७) एक वर्ष की आयु के थे। (१०-२६)

बाल स्वभाववश, माटी खाने की शिकायत पर कृष्ण ने मिट्टी खायी है अपनी सफाई देते हुए इन्होंने अपना मुख खोल कर माता यशोदा को उस के अंदर ब्रह्माण्ड का दर्शन कराया (१०-८)

ऊखल में "बंधे हुए नासमझ कृष्ण ने ऊखल को घसीटते हुए ले जाकर उसे दोनों वृक्षों के बीच से निकाल कर यमलार्जुन का उद्धार किया (१०-१०)

[illegible] का [illegible] किया? एक फल वाली ने फलों से इनके दोनों हाथों को भर दिया तब इन्होंने प्रसन्न होकर उसके फल-पात्र को रत्नों से भर दिया। (१०-११)

(1888)

पूतना और बकासुर के छोटे भाई अजगर रूपधारी अघासुर राक्षस का पाँच वर्ष की आयु में नाश किया (10-12)

इसके बाद ब्रह्मा जी को मोह हो गया और प्रभु की लीला देखने के लोभ में वन में चरते हुए समस्त बछड़े और बाल ग्वालों को ब्रह्मा जी प्रभु की अनुपस्थिति में चुरा ले गए। एक साल तक प्रभु प्रत्येक गो-बछड़े एवं गोप-बालकों के उन्हीं के समान रूप और बोली बना कर नित्य वृन्दावन में जाते रहे। किसी को पता भी पता भी नहीं चलता कि ये कृष्ण ही हैं। एक साल के बाद प्रभु की यह महिमा देख कर ब्रह्मा का मोह नाश हुआ। तब ब्रह्मा जी को बछड़े और बालक इतने ही चतुर्भुज रूप में दिव्य आभूषण धारण किये हुए श्री कृष्ण ही दीखे (10-13)

बालवर्ष में कृष्ण ने यमुन-जल को घोर
विष-युक्त कर रखनेवाले कालिय नाग
को यमुनजल में कूद कर उसके सिर पर
नाच नाच कर बेहाल कर दिया कि अंत
में उस के शीश पर अपने चरण चिन्ह
रचित कर बेहाल भी कर दिया। इस के
बाद उसको वहां से रमणक द्वीप भेजकर
यमुनजल को पीने योग्य कर दिया (१०-१६)

दावानल की प्रचंड आग को अपने
मुंह में पीकर गोपवत्सों एवं बच्चों की
रक्षा की (१०-१९) (१०-१७)

जब इन्द्र ने कोप कर ब्रज पर
मुसलाधार वृष्टि कर व्रजवासियों को अपार
कष्ट देना आरंभ किया तब सात वर्षीय
बालक कृष्ण ने सात दिनों तक गोवर्धन
पर्वत को एक हाथ पर उठा कर उनकी रक्षा
कर कर इन्द्र का मान मर्दन किया।
(१०-२५) (१०-२६) इस पर इन्द्र ने विनीत
प्रार्थना कर श्रीकृष्ण का अभिषेक किया
(१०-२७)

(1890)

नव (नौ) वर्ष की उम्र में ही कृष्ण
नहाती हुई नग्नावस्था में ही ~~[illegible]~~ गोपकुमारियों
का वस्त्र हरण करके उन्हें नहाने के
शास्त्र-मर्यादा भंग करने की दोष
को समझाया था। उस समय कृष्ण
को पति रूप में पाने के लिये
कात्यायनी देवी का व्रत कर रहीं
थीं। ये गोपियां दण्डकारण्य के
ऋषि मुनि थे जो श्री राम के सुन्दर
रूप को देखकर मुग्ध हो गये थे तब
श्री राम ने उन्हें वरदान दिया था एवं कुछ
साक्षात श्रुतियों का ही अवतार थीं
ये एक एकत्रित होकर नहा रही थीं
(कृष्णोपनिषद) (व. २२) द्वापर युग
के नौ वर्षीय बालक के अन्दर काम इच्छा
की कल्पना भी नहीं की जा सकती
इसलिए उस कृष्ण के लिये जो सम्पत्तियों
का स्पष्ट कहते हैं "संसार में ऐसा
अपूर्व [illegible] ही मनुष्यों की प्रीति का

अग्रजु घर को कारण नहीं होसए। इसलिये क्रुध में चिपक जाते है हे कृष्ण मुझे बहुत शीघ्र ... लोगी
(१०-२३-३२ श्लो)

एक बार श्री कृष्ण जी के दर्शन की लालसा से उनके पिता नन्दजी को वरुण ने मंगवाया। पिता को लाने के लिये जब प्रभु वरुण-लोक गये तब दर्शनाभि-लाषा पूरी हो जाने पर भगवान की स्तुति करके नन्दजी को लौटा दिया (१०-२८)

[illegible] श्री कृष्ण ने शरद ऋतु की पूर्णिमा की रात में वन में जाकर बंसी बजायी। इस ध्वनि को सुनते ही गोपियाँ अपने अपने हाथों के काले हुए कामों को ज्यों का त्यों छोड़ छाड़ कर उस ध्वनि का पीछा करती हुई जब जब कृष्ण के पास पहुंची तब उन्होंने अपने घरों को तुरत लौट जाने को बहुतेरा समझाया पर वे नहीं जाती

(1892)

एवं अत्यंत कुशल ही होकर भी तब कृष्ण
ने आत्माराम होकर उनके साथ
रास-लीला करने लगे। (१०-२९)
किन्तु गोपियों को अहंकार-अभिमान
का उदय होने से ही कि वे संसार में
सबसे श्रेष्ठ हैं श्री कृष्ण वहीं उनके
बीच में अन्तर्धान हो गये। (१०-२९)
तब गोपियाँ व्याकुल हो कर उन्हें
ढूंढती हुई वन विलाप कर करती
इधर उधर भटकने लगीं (१०-३०)
सब को छोड़ कर एक को प्रभु एकान्त में
ले गये थे स्वाभाविक ही उसमें अभिमान
आया कि मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। अतः उसने
कहा मुझसे अब नहीं चला जा रहा आप
मुझे कंधे पर चढ़ा कर ले चलें। प्रभु
ने कहा अच्छा तुम मेरे कंधे पर चढ़ लो।
जैसे ही वह चढ़ने लगी प्रभु तुरन्त
फिर अन्तर्धान हो गये (१०-३०) फिर

सब के प्रगट हो कर बोले जो लोग भजते हैं उन्हें भी मैं नहीं भजता ताकि उनकी मनोवृत्ति निरंतर मेरी ओर लगी रहे (१०-३२-२०) तुमने मेरे - सुखों को छोड़ कर मेरा भजन किया है अतः तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्दोष है (१०-३२-२२) फिर महारास प्रारंभ हुआ इधर प्रभु माया से गोपों ने अपनी २ पत्नियाँ अपने पास ही देखा (१०-३३-श्लो. ३८)। उपर्युक्त से यह स्पष्ट होता है इसमें प्रभु की आत्म-क्रीड़ा ही थी काम बिल्कुल लेश मात्र भी नहीं था। वियोग ही संयोग का पोषक है कि जिसमें मान और मद का लेशमात्र भी है प्रभु के पास रहने पर भी प्रभु-दर्शन नहीं कर पाते। सभी गोपियां प्रभु की अंतरंग शक्ति हैं" स्वकीया हैं"

एक बार एक भयंकर सर्प ने नन्द को निगल लिया। नन्दजी द्वारा सहायता के लिये पुकारने पर प्रभु ने उस सर्प को अपने श्रीचरणों से सिर्फ छू दिया। प्रभु चरणों का स्पर्श पाते ही दिव्य विद्याधर का रूप धारण कर सुदर्शन प्रभु की स्तुति कर स्वलोक चला गया (१०-३४-९)

कुबेर के सेवक शंखचूड़ के कुकर्म के कारण प्रभु ने पीछा कर पकड़ कर एक ही घूँसे में उसका वध कर के शिरोमणि लाकर बलरामजी को दी (१०-३४)

बैल रूप धारी अरिष्टासुर जब प्रभु की ओर झपटा तब उसके सींग उखाड़ कर उन्हीं सींगों से उसे मार डाला (१०-३६)

घोड़े का रूप धारी केशी दैत्य जब प्रभु ने उसके मुख में अपनी बायीं भुजा घुसा कर भुजा बढ़ा कर मार डाला। गोपरूप धारी व्योमासुर को मार डाला। (१०-३७)

कोई भी पुरुष भगवान का न प्रिय, न अति सुहृद, न अप्रिय है, न शत्रु है और न उपेक्षणीय ही है। तथापि कल्पतरु की तरह अपने निकट आने वालों की कामना पूरी करते हैं और भक्तों को उनके भावानुसार फल देते हैं (१०-३८-श्लो २२)

श्री कृष्ण अब ग्यारह वें साल की उम्र में हैं। कंस ने भक्त अक्रूरजी को कृष्ण बलराम को मथुरा बुलालाने के लिये भेजा। मार्ग में प्रेमविभोर अक्रूर प्रभु दर्शन की भाँति २ कल्पना करते जाते थे। पहुँचने पर प्रभु ने उनकी सारी कल्पनाओं को पूरा किया। (१०-३८) दूसरे दिन सुबह समस्त गोपों के साथ प्रभु ने मथुरा के लिये प्रस्थान किया। विरह कल्पना से व्याकुल गोपियों को बिलखते देख प्रभु ने "मैं फिर लौटूंगा" कह कर उन्हें धीरज बंधाया। (१०-३९-३५) मार्ग में जब अक्रूर यमुना जल के अंदर बैठकर गायत्री जाप कर रहे थे तो देखा।

वहाँ जल में बलराम और कृष्ण दोनों
बैठे हैं ज्यों ही श्रम निवारने के लिये जल
से बाहर सिर निकालकर देखा दोनों
भाई तो रथ पर ही बैठे हैं । फिर श्रम
निवारने जल के अंदर में डुबकर बैठे तो
देखते हैं शेष जी की गोद में चतुर्भुज
नारायण की शान्त मूर्ति है और हाथों
में शंख चक्र गदा पद्म लिये हैं गले में
वनमाला और कौस्तुभ मणि से । विराजमान
हैं विविध देवता, महर्षि, पार्षद, सनकादि
प्रह्लाद नारद, अष्ट वसु आदि भक्त
विविध प्रकार स्तुति कर रहे हैं विविध
शक्तियाँ उन प्रभु की सेवा कर रही हैं । अ-
अक्रूर ने भी प्रभु चरणों में सिर नवा
कर स्तुति करने लगे (१०-३९)

मथुरा प्रवेश करने पर जब नगर देखने
प्रभु निकले तब मार्ग में कंस का धोबी मिला
कंस के कपड़े अपने लिये माँगने पर उसने
तिरस्कार करते हुए अपमान-सूचक शब्द

(1897)

फिर तब प्रभु ने अपने हाथ के अग्रभाग से उसका सिर काट डाला तब उसके अनुचर भी सारे कपड़े छोड़ भाग छूटे। प्रभु ने उन कपड़ों में से ले स्वयं पहने एवं अन्य सखाओं को बाँट दिये। आगे दरजी मिला उसने काट छाँट कर सब के कपड़े सजा दिये, प्रसन्न हो प्रभु ने उसे उत्तम धन, बल, ऐश्वर्य, स्मृति, शक्ति एवं सायुज्य मोक्ष दिया। सुदामा माली ने परम सुगंधित फूलों की माला से सब को सजा दिया, उसे अचल भक्ति, धन बल यश कीर्ति दी। (10-41)

आगे कंस की त्रिवक्रा दासी मिली उसने अंगराग का लेप कर दिया, प्रभु ने अपने चरणों से उसके पंजों को दबा कर हाथ की दो अंगुलियाँ उसकी ठोड़ी में लगा कर उसके शरीर को सीधा कर दिया एवं वह अति सुंदर युवती हो गयी। आगे चलकर धनुष शाला पहुँच कर वहां रखे विशाल को बाँये हाथ से उठा कर तोड़ डाला और रक्षकों को मार भगाया (10-42)

(1898)

दूसरे दिन प्रातः मल्लक्रीड़ा देखने चले रंगशाला के द्वार पर शराब पिला कर कंस ने कुवलयापीड हाथी प्रभु को कुचलने हेतु खड़ा कर रखा था। रस्ता मांगने पर महावत ने प्रभु पर हाथी को छोड़ दिया। प्रभु ने उसे मार कर उसके दांत हाथ में ले रंगभूमि में प्रवेश किया। (१०-४३) फिर मल्लों द्वारा ललकारने पर दोनों भाई अखाड़े में कूद पड़े एवं कृष्ण चाणूर से एवं बलरामजी मुष्टिक से भिड़ गये। श्रीकृष्ण ने चाणूर की दोनों भुजाएं पकड़ और अंतरिक्ष में कई बार घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया जिससे वह मर गया। इधर बलराम बांयें हाथ के घूंसे से ने मुष्टिक को एक तमाचा मार कर मार डाला। (१०-४४)

फिर प्रभु वेगपूर्वक उछल कंस के मंच पर चढ़ गये और उसके केश पकड़ कर उसे उस ऊंचे मंच से रंगभूमि में गिरा कर उसके ऊपर स्वयं कूद कर उसे मार

डाला। ऐसा अत्यंत अगम्यता के साथ खाने-पीने, बातचीत करने, घूमने, सोने और श्वास लेने आदि सभी क्रियाओं के समय निरंतर भगवान चक्रधर नारायण को अपने नेत्रों के सामने देखता था अतः अत्यंत दुष्प्राप्य होने पर भी उसे उसी रूप की प्राप्ति हुई। (४०-४४)

(1900) क्रम सं० 89

14/3/84 लिखे दोहे (संकलित)

(1) Means governs ends and we should never adopt wrong means even for right ends (P. Jawaharlal Nehru)

(2) Tolerance is not only a virtue but the only practical approach to the problems of today — Nehru

(3) किसी की शिकायत भलाई से दूर मत करो

(4) प्रतीक्षा करो और देखो

(5) आशीर्वाद गुरु (ईश्वर इच्छा पूर्ण हो)

(6) ईश्वर स्वयं अपनी सत्ता का विश्वास कराता है।

(7) बुरे विचार मन में रखना रोग के कीटाणुओं के समान है।

(8) आशा सदा सुखदायी है।

(9) जीवन में संघर्ष जरूरी है।

(10) कौनसा सबसे बड़ा बल है।

(11) दूसरों के वचनों पर विश्वास करके खतरा मोल मत लो

(12) सत्यनिष्ठा जीवन का रहस्य है।

(13) अंधेरा ही अंधेरा दीखे तो ईश्वर का स्मरण

(14) दुःख से मत घबराओ, यह नहीं वह सफलता की भूमिका हो। दुःख के बाद सुख भी अवश्य ही आवेगा। दुःख के समय ही सुख का सृजन होता है जिसे हम देख नहीं सकते। अपने दुःखी जीवन के कटु अनुभवों को मत भूल ताकि दुखियों के दुःख को जान सको।

(15) बड़े विचारों पर बहस करते, साधारण दैनिक घटनाओं पर और छोटे व्यक्तियों पर।

(16) मजबूत को कमजोर बनाने से ही कमजोर मजबूत नहीं बन जाते।

(17) भगवान जब सगुण रहते हैं तब ईश्वर एवं निर्गुण रहते हैं तब ब्रह्म कहाते हैं।

(18) प्रभु-दर्शनाभिलाषी को नाम के विश्वास और सत्याचरण का विचार करते रहना चाहिये।

(19) संसार द्वारा निन्दा स्तुति की परवाह न कर आप हे प्रभु सत्य के पथ पर चलो।

(२०) प्रभु चिंतन का नाम ध्यान है। सतत चिंतन से प्रभु-प्रकाश प्राप्त होता है फिर सतजन की एक अपूर्व इच्छा होती है। उनकी गुरुता कीर्तन एवं महिमा का गान स्तवन है।

(२१) छोटों के प्रति वफादार रहो यदि उनसे वफादारी चाहते हो तो।

(२२) चिंता से लाभ नहीं, दुख घटता नहीं, बुद्धि मंद पड़ जाती है, कार्य छूट जाते हैं।

(२३) तुम्हारे सिवाय दूसरा तुम्हें शांति नहीं पहुंचा सकते।

(२४) तुमसे घृणा करने वाले की भी भलाई करो।

(२५) जो काम अपनी संतान को नहीं करने देना चाहते उसे स्वयं मत करो।

(२६) किसी से बदला लेने की चेष्टा मत कर प्रकृति खुद उसे सजा देगी।

(२७) किसी के दाम्पत्य जीवन में किसी का पक्ष न लें।

(२८) कुछ काम की भावना हो तो तुरन्त मत करो पीछे के लिये छोड़ दें संभव है वह काम न करो किन्तु अच्छे काम को तुरन्त करो कहीं ऐसा न हो कि मन बदल जाय, परिस्थिति प्रतिकूल न हो जाय।

(२९) किसी काम को करने के पहले सौ बार सोच लें ताकि पछताना न पड़े।

(३०) जो जितना प्रफुल्ल रहता है उतना ही प्रभु के निकट रहता है।

(३१) Try to understand the other side in a receptive mood even though you differ. Nehru

(३२) सुखी रहने का रहस्य, जो तुम चाहते हो उसे न करके जो करते हो उसे चाहना है।

(३३) तेरे पास ज्यादा चीजें पूरी पूरी मिल नहीं सकती तो थोड़ी के लिये मनचाही ख्वाहिश पर ही संतोष करना होगा

(३४) To understand is to set up a relationship.

(३५) There is nothing so degrading as constant anxiety about means of livelihood. Nehru
Money is like sixth sense without it one can't make complete use of the other five, half the possibilities of are shut off. Poverty eats into soul like cancer.

(36) पुरुष में नारी के गुण आ जाने से वह महान बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आने से वह कुरूप बन जाती है।

1905

(37) प्रभु का आश्रय वह है जो विहीन, दीन, निःस्वार्थ है

(38) Your heart should not be hard, touch should not hurt, temper should not harshen.

(39) पिछले पापों का प्रायश्चित्त और भविष्य के लिये दृढ़ निश्चय ही आवश्यक है।

(40) मनुष्य के लिये जितने शुभ काम में अपनाओगे वैसा ही ज्ञान और ध्यान वह तुम्हें देगा।

(41) प्रेम उससे करना चाहिये जिसमें कुछ भी कुरूपता न हो। सिर्फ ईश्वर ही ऐसा है अतः सिर्फ ईश्वर से प्रेम करो — रामस्याम

(42) प्रेम और मोह में बहुत फर्क है - रामतीर्थ

(43) जिस विषय को बुरा समझते हो उसमें मन न दो।

(44) तुच्छ विषयों पर ध्यान देने से महान छूटेगा।

(45) तुम्हारा मन शुद्ध है तो तुम मुक्त हो जाओगे।

(46) चाहे रहें चेतन सभी के मन में प्यारे,
जहाँ मैं ये मन ईश्वर परमात्मा पाऊं।
आशा सों आधार विचार के उपकार में,
उस प्रभु का विश्वास सदा दृढ़ रहे हृदय में॥

(47) प्रभु हमेशा से रहे साथ हैं, मुझे बहुत प्यार करते हैं, कहाँ कहाँ कितनी प्रकार से रक्षा करते हैं याद कर कर के उनका सदा नमस्कार करते रहना। किसी प्रकार की यहां तक की शिकायत भी नहीं करना। उन्हें याद किये बिना रहा जाता इस स्वभाव से पुकारना सबसे बढ़कर है। संकट में पुकारना भी कल्याणकारक है किंतु संकट दूर होने पर भूलना ठीक नहीं।

(48) मूर्ति को टकटकी लगाकर देखते हुए एकाग्र मन से जप करने से दर्शन हो सकते हैं।

(49) भगवत् स्पर्श बुद्धि से सबका सत्कार करने एवं नाम जाप से प्रारब्ध से दुःख पार पाया जा सकता है

(50) ऐसा दिन नहीं रहेगा।

(51) शास्त्र और महापुरुषों के वचन पर विश्वास करो इनके साथ जिसका मेल नहीं उसे विष की तरह छोड़ दो

(52) अहंकार से बढ़कर दूसरा शत्रु नहीं।